THE ECONOMIC TIMES

Date:27-11-23

Hang On, Rethink The Death Penalty

ET Editorials

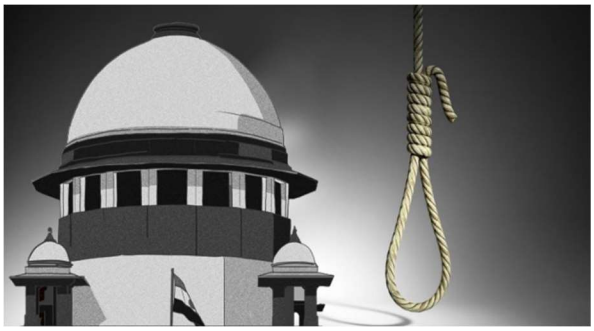

The demand for abolishing the death penalty got a fresh impetus on Wednesday when most lawyers present at a Supreme Court hearing on reducing instances of capital punishment wanted the provision to go. Their stand aligns with the growing worldwide support for its abolition. Close to three-quarters of the world has abolished it.

India, however, is among the outliers. It voted against a United Nations draft resolution on abolishing capital punishment. The proposed new law, Bharatiya Nyaya Sanhita Bill 2023 that seeks to replace the British Raj-era Indian Penal Code, has increased the number of crimes that can attract the death penalty from 11 to 15. At the end of 2022, 539 convicts were on death row, the highest since 2016. The top court, however, has been saying that the lower courts must proactively elicit materials on mitigating circumstances of a convict before deciding on the case. The 262nd report of the Law Commission also favoured abolition, except in terrorrelated offences.

India follows the 'rarest of the rare' principle for the death penalty. But there are no clear guidelines on what is meant by 'rarest of the rare', leaving it too subjective. Arguments against the death penalty range from a person's right to life, inherent biases in the legal system (marginalised classes top the list in death row), to the difficulty in gathering information on mitigating circumstances. However, the question that needs to be answered first is: does capital punishment actually work as a deterrent? There is nocorrelative proof anywhere in the world to support this belief. And till there is data-backed evidence, it would be prudent to go by what the American Civil Liberties Union said: 'The death penalty costs more, delivers less, and puts innocent lives at risk.'

THE HINDU

Date:27-11-23

Far-right turn

The rising tide of ethno-nationalist politics in Europe is worrying

Editorial

The victory of Geert Wilders, a far-right, anti-Islam populist, in the parliamentary elections has put the Netherlands, long seen as one of the most socially liberal countries in Europe, at a crossroads. According to the preliminary results, Mr. Wilders's Party for Freedom (PVV) has emerged as the single largest party with 37 seats in the 150-member lower house. The Labour-Green coalition won 25 seats, while the incumbent People's Party for Freedom and Democracy (VVD) secured 24. While the PVV is far from the 76 seats needed for a majority, its formidable performance (it won three more seats than what the VVD won in the last elections) puts Mr. Wilders in a position to start coalition talks and on a potential path towards becoming the country's first far-right Prime Minister. Over the years, Mr. Wilders has built an image of himself as one of the most radical far-right populists in Europe. He has called for "de-Islamising" the Netherlands, shutting down mosques, banning the Koran, and closing the borders to migrants from Muslim-majority countries. He made the influx of migrants a strong political issue during the campaign, which appears to have helped him deal the greatest blow to the political establishment.

The PVV's victory is neither surprising nor isolated. Mr. Wilders, a member of the House of Representative since 1998, split from the conservative VVD in 2004 to form the PVV. Since then, he has been pushing his brand of populism in Dutch politics. In the past, the VVD, led by outgoing Prime Minister Mark Rutte, avoided tying up with the PVV because of the latter's controversial views. But by grabbing the highest number of seats in the House, the PVV has now placed itself at the centre of Dutch politics. It is not certain whether Mr. Wilders will be able to put together a governing coalition. But even if he is kept out of power, the leader of the largest party in Parliament cannot be ignored. His rise is in line with the rise of far-right parties and populists across Europe. In France, Marine Le Pen finished a close second in the 2022 presidential elections. In Italy, a party with neo-fascist origins is in power. In Germany, the AfD, which has neo-Nazi roots, is the second most popular party. This should be a wake-up call for the establishment parties in the West. The far-right is using the immigration and the cost-of-living crises to mobilise the public under its exclusive, ethno-nationalist brand of politics, while the political centre is struggling to hold. Establishment parties should have a clear economic agenda and political vision to arrest the rising tide of far-right politics, which echoes Europe's dangerous and not-so-distant past.

दैनिक जागरण

Date:27-11-23

मज़बूरी बनी रेवड़ी संस्कृति

कपिल सिब्बल, (लेखक राज्यसभा सदस्य एवं वरिष्ठ अधिवक्ता हैं)

इस चुनावी मौसम में मतदाताओं को लुभाने के लिए मुफ्त पेशकश के मामले में होड़ करके राजनीतिक दल एक दूसरे को मात देने में लगे हैं। चुनाव में रेवड़ियों की इस बारिश के राजनीतिक एवं आर्थिक, दोनों निहितार्थ हैं। साथ ही यह उन राजनीतिक दलों के दोहरे रवैये को भी जाहिर करता है जो मुफ्त पेशकश के मामले में दूसरे दलों को तो

आईना दिखाते हैं, लेकिन चुनाव जीतने के लिए खुद उनका सहारा लेने से कोई संकोच नहीं करते। यह दोहरा रवैया भाजपा के डीएनए में है।

गत 16 जुलाई को ही प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने कहा, 'रेवड़ी संस्कृति देश के विकास की राह में बाधक है। रेवड़ी संस्कृति के पैरोकार कभी एक्सप्रेसवे, एयरपोर्ट और डिफेंस कारिडोर नहीं बना सकते। युवाओं को खासकर इस संस्कृति के प्रति सतर्क रहना चाहिए, क्योंकि यह उन्हें लालच देकर उनके भविष्य को अंधकार की ओर धकेलती है। हमें साथ मिलकर देश की राजनीति से इस रेवड़ी संस्कृति को मिटाना है।'

यदि प्रधानमंत्री रेवड़ी संस्कृति को लेकर इतने ही चिंतित हैं तो वह अपनी ही पार्टी के नेताओं की तमाम चुनावी घोषणाओं को कैसे जायज ठहराएंगे। उत्तर प्रदेश के पिछले विधानसभा चुनाव में भाजपा अध्यक्ष जेपी नड्डा ने एलान किया था कि राज्य की लड़कियों को सशक्त बनाने के लिए उनकी सरकार मेधावी छात्राओं को मुफ्त स्कूटी देगी। भाजपा ने गरीब परिवारों की लड़कियों की शादी में एक लाख रुपये की वित्तीय सहायता का भी वादा किया। मध्य प्रदेश में भी भाजपा ने किसानों को भारी-भरकम सब्सिडी दी। वहां घरेलू उपभोग के लिए बिजली पर भी सब्सिडी दी गई। दिल्ली में भाजपा जहां केजरीवाल सरकार द्वारा दी जा रही सब्सिडी का विरोध करती आई है तो पंजाब में उसने प्रत्येक परिवार को 300 यूनिट मुफ्त बिजली देने का वादा किया।

चुनाव में विभिन्न वर्गों को लुभाने की एक संस्कृति सी बन गई है। इस खेल में भाजपा इकलौती खिलाड़ी नहीं। कांग्रेस सहित सभी राजनीतिक दलों ने इसे बढ़ावा दिया है। खासतौर से आम आदमी पार्टी यानी आप इस संस्कृति की प्रवर्तक रही, जिसने दिल्ली में इसे आजमाया और जनता ने भी पार्टी को दोबारा सत्ता सौंपकर उसे पुरस्कृत भी किया। इन मुफ्त पेशकशों की प्रकृति की पड़ताल करें तो पाएंगे कि ये उपाय समाज के उस विपन्न तबके की स्थिति में सुधार से जुड़े हैं, जिसे आर्थिक सहायता की आवश्यकता होती है। इसी कड़ी में संप्रग सरकार ने मनरेगा जैसी संकल्पना की थी। मनरेगा के माध्यम से अकुशल कर्मियों को सौ दिनों का रोजगार उपलब्ध कराना था। इसका उद्देश्य प्रत्येक ग्रामीण परिवार को एक निश्चित आय प्रदान करना था। इसके अतिरिक्त किसानों की कर्ज माफी हुई। चूंकि किसानों के पास कर्ज अदायगी के लिए पर्याप्त संसाधन नहीं थे तो इसका मकसद उन्हें उस स्थिति से उबारना था। बाढ़ और सूखे से फसल को हुए नुकसान के अलावा औपचारिक-अनौपचारिक स्रोतों से कर्ज लेने के अतिरिक्त ग्रामीण संकट बढ़ाने वाले कई कारण प्रभावी रहे।

उल्लेखनीय है कि कृषि में लागत के अनुपात में किसानों की आमदनी उतनी नहीं बढ़ी है। उज्ज्वला जैसी केंद्र की कथित रेवड़ी योजना को ही लें तो इसने राजनीतिक रूप से लाभ पहुंचाने के अलावा ग्रामीण परिवारों को रियायती दरों पर सिलेंडर की सुविधा भी प्रदान की है।एक कड़वी हकीकत यह भी है कि देश के 80 करोड़ लोगों की मासिक आय करीब 5,000 रुपये है। ऐसे में विभिन्न सरकारी योजनाओं और सहायता के बिना उनकी गुजर-बसर संभव नहीं लगती। केंद्र सरकार की कल्याणकारी योजनाएं भी दो प्रकार की हैं। करीब 740 केंद्रीय योजनाओं का पूरा व्यय केंद्र सरकार वहन करती है। फिर, केंद्र प्रायोजित योजनाओं की बारी आती है, जिनके खर्च की पूर्ति केंद्र और राज्य सरकारें मिलकर करती हैं। इनमें वित्तीय समावेशन, मुफ्त स्वास्थ्य सेवाएं, जल से नल, किसानों के लिए कर्ज और बीमा, मुफ्त एलपीजी कनेक्शन और रियायती दर पर सिलेंडर, बालिका शिक्षा, मकान बनाने के लिए वित्तीय सहायता और बिजली जैसी योजनाएं शामिल हैं। इनमें से अधिकांश योजनाओं की संकल्पना कांग्रेस ने की थी और मोदी ने न केवल उन्हें अपनाया, बल्कि उनकी री-ब्रांडिंग कर यह अनुभूति कराई कि वही उनके मूल प्रवर्तक हैं।

रेवड़ी योजनाओं का अस्तित्व और उनका निरंतर विस्तार यही संकेत करता है कि एक के बाद एक सरकारें आर्थिक मोर्चे पर ऐसा परिवेश बनाने में नाकाम रही हैं, जिसमें नागरिकों को एक निश्चित आय के अवसर मिल सकें। ऐसे में मुफ्त सुविधाएं मुश्किलों से मुक्ति का माध्यम प्रतीत होती हैं। एक ऐसे देश में जहां सामाजिक सुरक्षा आवरण का अभाव है, वहां ये और आवश्यक हो जाती हैं। ऐसे में यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि यदि मोदी सरकार के पिछले करीब दस वर्षों में लोगों का जीवन स्तर सुधरा होता तो हमें रेवड़ी संस्कृति में संकुचन दिखाई देता। इस सरकार की हकीकत यही है कि उसकी नीतियों ने कुछ पसंदीदा लोगों को ही सर्वाधिक लाभ पहुंचाया।

इन मुफ्त पेशकशों के आर्थिक पक्ष को समझना भी आवश्यक है। चूंकि किसानों, वंचितों, दलितों और अन्य पिछड़े समुदायों जैसे एक बड़े वर्ग तक रेवड़ियां पहुंचाने में ही अधिकांश संसाधन खर्च हो जाते हैं तो पूंजीगत व्यय के लिए गुंजाइश घट जाती है। परिणामस्वरूप नए स्कूल, अस्पताल, सड़क, संचार और हाईवे जैसी उन परियोजनाओं के लिए पैसों की किल्लत हो जाती है, जिनकी दीर्घकालिक आर्थिक लाभ की दृष्टि से बड़ी महत्ता है। तब प्रधानमंत्री की वह चेतावनी सही लगती है कि रेवड़ी संस्कृति विकास में अवरोध बनती है, क्योंकि पूंजीगत व्यय ही आर्थिक वृद्धि को गति प्रदान करता है। पेशकशों की पूर्ति के लिए सरकारों को कर्ज लेना पड़ता है, जिससे राजस्व और राजकोषीय दोनों घाटे बढ़ते हैं। कर्ज की देनदारी बढ़ती है।

यह एक ऐसी चुनौती है, जिससे अनुवर्ती सरकारों को जूझना पड़ता है। बहरहाल, सरकारों के पास तब कोई और चारा भी नहीं बचता, जब वे आजादी के 75 वर्ष बाद तक सामान्य जन को तमाम बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध कराने में भी नाकाम रही हैं। रेवड़ी पर प्रधानमंत्री की चिंता को लेकर हम उनके आभारी हैं, लेकिन साथ ही उनसे यह अनुरोध भी करते हैं कि वह यह स्वीकार करें कि गरीबी और अभावग्रस्तता जैसी समस्याओं के समाधान में उनकी सरकार नाकाम रही है। हमें ऐसी सरकार चाहिए जो संस्थागत स्थिरता प्रदान करे। टकराव बढ़ाने के बजाय आर्थिक वृद्धि को गति दे। ऐसी सरकार के चुनाव में आगामी आम चुनाव निर्णायक पड़ाव होगा।

जनसत्ता

Date:27-11-23

तकरार में सरकार

संपादकीय

दिल्ली सरकार और उपराज्यपाल के बीच तकरार का फिलहाल कोई अंत नजर नहीं आता। सरकार के हर कदम पर उपराज्यपाल की ओर से अवरोध सामने आता है और फिर दिल्ली सरकार अदालत का दरवाजा खटखटाने चली जाती है। मुख्य सचिव की नियुक्ति को लेकर अब एक बार फिर दोनों के बीच का टकराव अदालत तक पहुंचा है। सर्वोच्च न्यायालय ने इसका समाधान सुझाते हुए केंद्र सरकार और उपराज्यपाल से कहा है कि वे पांच अधिकारियों के नाम दिल्ली सरकार को सुझाएं, ताकि वह उनमें से किसी एक को मुख्य सचिव के रूप में चुन सके। इस तरह बुधवार तक नए मुख्य सचिव के नाम की घोषणा हो सकती है। इस मामले की सुनवाई करते हुए एक बार फिर सर्वोच्च न्यायालय

की पीठ ने पूछा कि उपराज्यपाल और मुख्यमंत्री राजनीतिक कलह से ऊपर ने उठ कर, आमने-सामने बैठ कर ऐसी समस्याओं का समाधान क्यों नहीं निकाल सकते। आप लोग हमें कोई ऐसा तरीका सुझाएं, जिससे सरकार चलाई जा सकती है। दरअसल, सर्वोच्च न्यायालय भी अब दिल्ली सरकार और उपराज्यपाल के बीच के रोज-रोज के झगड़ों से तंग आ चुका है। मगर मुश्किल यह है कि केंद्र सरकार ने उपराज्यपाल के जरिए दिल्ली सरकार पर हर तरह से नकेल कसने का कानूनी इंतजाम कर रखा है।

वर्तमान मुख्य सचिव का कार्यकाल इस महीने खत्म हो रहा है। उनकी जगह नए सचिव की नियुक्ति होनी है। दिल्ली सरकार ने वर्तमान मुख्य सचिव पर भ्रष्टाचार के गंभीर आरोप लगाए हैं और उससे संबंधित रपट भी उपराज्यपाल के पास भेजी है। हालांकि उपराज्यपाल ने रपट को राजनीतिक दुराग्रह से तैयार की हुई बताते हुए उस पर कोई कार्रवाई करने से इनकार कर दिया। दिल्ली सरकार को लग रहा था कि केंद्र सरकार कहीं वर्तमान मुख्य सचिव का कार्यकाल न बढ़ा दे । इसलिए उसने अदालत में गुहार लगाई कि चूंकि नए दिल्ली सेवा कानून को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गई है, इसलिए बिना दिल्ली सरकार से सुझाव लिए मुख्य सचिव के कार्यकाल में विस्तार या फिर नए मुख्य सचिव की नियुक्ति नहीं की जा सकती। नए कानून के मुताबिक मुख्य सचिव की नियुक्ति का अधिकार उपराज्यपाल को है। हालांकि जब यह नियम नहीं था, तब भी मुख्य सचिव की नियुक्ति में उपराज्यपाल की ही मर्जी चलती थी। इससे पहले दिल्ली विद्युत विनियामक आयोग के प्रमुख की नियुक्ति के मामले में भी सर्वोच्च न्यायालय को जुलाई में दखल देना पड़ा था। तब भी अदालत ने यही कहा था कि ऐसे मामलों को उपराज्यपाल और मुख्यमंत्री को मिल बैठ कर क्यों नहीं सुलझाना चाहिए।

यों जबसे दिल्ली में आम आदमी पार्टी की सरकार बनी है, तभी से उपराज्यपाल और सरकार के बीच तकरार की स्थिति बनी रहती है। इसके पहले भी जो उपराज्यपाल आए, उनके साथ दिल्ली सरकार का तालमेल ठीक नहीं रहा। इसे लेकर दिल्ली सरकार ने अदालती लड़ाई भी लड़ी। आखिरकार सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला दिया था कि चुनी हुई सरकार को ही नीतियों से संबंधित फैसले करने का अधिकार है। उपराज्यपाल को उसमें दखल देने का कोई अधिकार नहीं है। तब केंद्र सरकार ने अध्यादेश जारी कर सरकार की सारी शक्तियों को उपराज्यपाल में केंद्रित कर दिया। फिर उसे कानूनी जामा भी पहना दिया गया। हालांकि इसे संविधान की मूल भावना के विरुद्ध उठाया गया कदम बताते हुए चुनौती दी गई है। मगर इसके बाद से दोनों के बीच तकरार कुछ अधिक तीखा हो गया है। इसका असर दिल्ली सरकार की सेवाओं और आखिरकार जनसामान्य पर पड़ रहा है।

राष्ट्रीय सहारा

Date:27-11-23

निजी क्षेत्र की वकालत

संपादकीय

अंतरिक्ष क्षेत्र के विकास में अवरोध वने नियंत्रणों को हटाने की जरूरत पर वल देते हुए भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) अध्यक्ष एस. सोमनाथ ने कहा है कि नियंत्रण, जो अनावश्यक हैं, हटाए जाने से देश अंतरिक्ष क्षेत्र में संभावनाओं का अच्छे से दोहन कर सकेगा। इसरो अध्यक्ष ने भारत में प्रथम रॉकेट प्रक्षेपण की 60वीं वर्षगांठ के अवसर पर शनिवार को तिरुवनंतपुरम में आयोजित समारोह के दौरान अंतरिक्ष क्षेत्र के विकास में निजी क्षेत्र की भूमिका को रेखांकित किया। उन्होंने ध्यान दिलाया कि इसरो में निजी क्षेत्र की भूमिका तलाशी जाने के बाद से इस क्षेत्र में खासी उपलब्धि हासिल हुई , और तमाम संभावनाएं दिखलाई पड़ रही हैं। भारत की उपग्रह विनिर्माण क्षमताओं में खासा इजाफा हुआ है।

अभी पांचभारतीय कंपनियां उपग्रह विनिर्माण करने में सक्षम हैं, और उनमें से तीन ने अपने उपग्रहों का विनिर्माण और विदेशों से सफल प्रक्षेपण किया है। यदि भारत में वेवजह के नियंत्रण हटा दिए जाएं तो आने वाले समय में भारतीय कंपनियों को विदेश से अपने उपग्रह प्रक्षेपित करने की जरूरत नहीं रह जाएगी। इसरों को लाभार्जन के मौके भी मिलेंगे और निजी क्षेत्र से ज्यादा पूंजी और अनुवंधी सहयोग वढ़ सकेगा। अंतरिक्ष क्षेत्र निजी क्षेत्र की आमद से इस क्षेत्र का उल्लेखनीय विकास हो सकेगा। गौरतलब है कि हाल तक उपग्रहों, प्रक्षेपण यान और संबद्ध प्रौद्योगिकियों का विकास और उत्पादन इसरो करता था, लेकिन जव से निजी क्षेत्र पर इस लिहाज से ध्यान दिया गया है, तव से भारत की उपग्रह विनिर्माण क्षमता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। निजी क्षेत्र को प्रोत्साहन का ही नतीजा है कि आज भारत के अंतरिक्ष क्षेत्र में 130 से ज्यादा स्टार्टअप कार्यरत हैं, और इनमें से कुछ तो ऐसे , जिनमें 400 से 500 से ज्यादा पेशेवरों को काम मिला है। इन स्टार्टअप्स का कारोवार पांच सौ करोड़ से एक हजार करोड़ रुपए तक है। स्थिति यह हो चली है कि निजी क्षेत्र के खिलाड़ी वेतनादि के मामले में इसरो को भी पीछे छोड़ चुके , और इसरो से ज्यादा वेहतर सुविधाएं अपने पेशेवरों को दे रहे हैं। इसरो से सेवानिवृत्त होने वाले विशेषज्ञ अपने अनुभव से अंतरिक्ष क्षेत्र में नवोन्मेष और शोध का ऐसा माहौल तैयार कर देंगे जिससे समग्र रूप में देश को अंतरिक्ष क्षेत्र में अग्रणी स्थान पर जा पहुंचने में मदद मिलेगी। सबसे बड़ी बात तो यह होगी कि अंतरिक्ष क्षेत्र को कारोवारी पुट मिलेगा और भारत अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी के अनुसंधान एवं विकास के उत्कृष्ट केंद्र में रूप में उभर सकेगा।